CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रामानंद सम्प्रदाय में दास्यभाव की अवधारणा

— स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य
श्री कोसलेन्द्र मठ अहमदाबाद- ३

शास्त्रों का अविचल सिद्धान्त है कि मानवजीवन का चरम लक्ष्य है— सायुज्य मुक्ति। यह भक्ति के बिना असम्भव है। "रामो ब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निश्रेयसम्"। जगद्गुरु श्री सानन्दाचार्य जी ने इस प्रकार 'एवं' शब्द का प्रयोग कर शुष्क ज्ञानादि अन्य साधनों को भक्ति के अंग के रूप में शास्त्रों का निचोड़ दर्शाया है। भक्ति के नौ भेद प्रधानतया शास्त्रों में प्रदर्शित हैं—

"प्रधानतया कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (भा० ७।५।२३)

प्रकृत श्लोक की व्याख्याओं में दास्यं कर्मार्पणम्, दास्यं- तद्यासोऽस्मीति अभिमानः, दास्ये- स्वस्यदासत्वभावना, दास्यं— जन्मान्तरसहस्त्रेषु यस्यस्मान्मति- रीदृशी। दासोऽहं वासुदेवस्य सर्वान् तददासत्वे भावनमातदनुकूलाचरणकृतस्य कर्मणेस्तस्मिन् अर्पणं च इत्यादि विविधरूप से निरुपण कर अन्यापेक्षया दास्यभाव को उत्कृष्ट प्रदर्शित किया गया है। संकलित निष्कर्ष यह हुआ कि दास्यभाव ही सख्य आदि सभी भावों का प्राण है। साधक के हृदय में जब-तक दास्य भाव पोषक सर्वेश श्री रामचरण में स्वात्म समर्पण की पूर्ण भावना जागरित नहीं होती है, श्रवणादि की पूर्ण फलदात्मक नहीं सिद्ध होते हैं। कारण कि दास्य सभी का प्राण है। प्राण के बिना निर्जीव होना स्वाभाविक है। श्रीचरणों के अनन्यानुरागी दासों की प्रभु से यही प्रार्थना है कि—

अहं हरे तव पादैकमूल

दासानुदासो भवितास्मि भूयः।

मनः स्मरेताशुपतेर्गुणांस्ते

गृणीत वाक कर्म करोतु कायः॥ (भा०६।११।२४)

आचार्य-चरण से दीयमान किसी भी श्रेष्ठ पदस्थानादि की कामना को सर्वतोभाव से त्यागकर कर मात्र अभिलाषा व्यक्त करता है कि आपके श्रीचरण सेवक रहना दास के भी दास बनकर स्वीकार है, पर इतर कोई पदस्थानादि नहीं। दास्य भक्ति की महिम ही है कि श्रीहरि सान्निध्य छोड़ अन्यों की आकांक्षा ही नहीं। कारणादि अन्य में यह रस ही नहीं है, जो दास्यभाव में है। श्री वहमी राजा, जो दास्यभाव के प्रधाननिदर्शनभूत हैं कहते हैं " स्वयंमुपेन्द्रणात्मान- मयाचता ऽऽ त्मानश्चाशिषो नो एव तद् दास्यमतिगम्भीर-वयसः कालस्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्वन्तर परिवृतं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥ यस्यानुसास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे न तु रवपित्र्यं यदुतांकुतोकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परामिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि ॥"

(भाग० ५।२४।२४-२५)

अर्थात् स्वयं उपेन्द्र भगवान् ने मुझसे भिक्षा मांगी, तो मैं अपना सर्वस्व समर्पण क्यों न कर दूँ ? कारण भगवान् की परमानन्दमयी सर्वोत्कृष्ट दास्य के समक्ष एक मन्वन्तर तक रहने वाला शीघ्र विनाशी त्रिलोक की राज्य भोग की क्या गणना है ? अतः उन परेश प्रभु की दास्यता ही भक्त प्रवर मेरे पितामह श्री प्रहलाद जी ने मांगी । जब उनके पिता हिरण्यकशिपु के मरने पर भगवान् का दिया हुआ सर्वतोभाव से भयवर्जित राज्य को स्वीकार न करते हुए यही यांचा की कि हे- सर्वाभयप्रद । सर्वशरण्य !! हे नाथ !!! मैं आयु, श्री, विभव तथा इन्द्रियारामादि प्रदायक ब्रह्मलोक तक का भी ऐश्वर्य नहीं चाहता । क्योंकि ये सब श्री चरणाराधन के अवरोधक हैं । पर सर्वाशाप्रपूरक प्रभो ! अविवेकी पुरुषों की विषयों में जैसी अनपायिनी भक्ति होती है, उसी प्रकार श्री चरणों में सर्वदा मेरी दास्यासक्ति बनी रहे, यही मेरी सर्व मनोरथ पूरक आप से यांचा है–

"या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।

स्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥

आयुः श्रियं विभवेन्द्रियमाविरंच्यात् ।

नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण ॥"

परेश के श्रीचरणों में जिनकी दृढ़निष्ठा होकर दास्यरूपता में सम्पृक्त हो चुके हैं, उनकी दृष्टि में सर्वेश श्री रामचरण-शरण सिवा सर्व पदार्थ या भोगादि यत्किंचितकर हैं । अभियुक्तों की उक्ति है –

"दासभूतमिदं तस्य ब्रह्माद्यं सकलं जगत् ।

आत्मदास्यं हरेः स्वाम्यं स्वभावं च सदास्मर ॥

ददाति परमां मुक्तिं सद्यो मुक्तिं विशेषतः ।

दास्येमेव परं धर्मं दास्यमेव परंहितम् ।

दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथानिरये व्रजेत् ॥

सोऽहं सोऽहं परित्यज्य दासोऽहं यो वदेत् सदा ।

वैष्णवः स जगत्पूज्यो याति विष्णोः परं पदम् ॥

पभुक्त स्रग्गन्धपासोऽलंकारचर्चितः ।

अच्छिष्ट भोजिनो दासा तव मायां जपेमहि ॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतः एक पादविभूतिस्थ भोगों का अनादरपूर्वक त्रिपाद विभूति सम्प्राप्ति रूप भगवत्कैंकर्य-दास्यता ही मानव जीवन का तुरीय लक्ष्य है। उसी के लिए सर्वदा सजग प्रयत्न प्राप्त होकर मुक्ति का साधन बनता है। जगदाचार्य पाद श्री ने गीता २-१२ के व्याख्यान-प्रसंग में—

"मुक्तौ हेतुस्तु भक्त्यपरपर्यायं तैलधारावद् अविच्छिन्नभगवत्स्मृतिसन्तानमेव । उक्तं च साधन दीपिकायामाचार्यवर्यैर्जगदगुरु श्री गंगाधराचार्यैः "रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैव मुक्तिराप्यते। भक्तिर्ध्रुवास्मृतिः, सा च विवेकादिक सप्तकात्" इति । ऊचुश्च तथैव भगवन्तः श्री देवानन्दाचार्य चरणा अपि "त्वदीया स्मृतिस्तारिकामृत्युसिन्धोस्तथा विस्मृतिः पातिका तत्र चैवापरं योगिनां हार्दमालम्बनं त्वां श्रये राघवं सच्चिदानन्द-रूपम्॥"

कहा है। संक्षिप्त तात्पर्य यह है कि - मुक्ति में कारण तो भक्ति है। अपर नाम जिसका ऐसा जो तेल के धारा के समान अविच्छिन्न भगवत्स्मृति सन्तान रूपा अनन्या भक्ति है — दास्य भावापन्नता, वही सायुज्य मुक्ति में कारण है। केवल ज्ञान या क्रिया मात्र मोक्ष में कारण नहीं है। इसलिए नीताचार्य जी ने कहा है —

"नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।

शक्यमेवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

भक्तया त्वनन्यया लभ्यः "

अर्थात् मैं वेदाध्ययन, दान, तपस्या आदि से प्राप्त नहीं होता हूँ, किन्तु अनन्या-दास्य स्वरूरूपाभक्ति से ही प्राप्त होता हूं। अतः भगवत्कैंकर्य प्राप्ति रूप मोक्ष में अनन्या भक्ति ही कारण है, तो यह मोक्ष का कारण भक्ति जिस जीव को भगवत्कृपा प्राप्त हो गयी, वह मुक्त हो गया, जिसे प्राप्त होगी, वह भविष्य में मुक्त होगा। साधन दीपिका नामक ग्रन्थ में आचार्यवर्य जगदगुरु श्री गंगा धराचार्य जी ने इसी प्रकार से भगवद्भक्ति को मोक्ष-कारण रूप से निर्वचन किया है। परमात्मा पर ब्रह्म श्री रामचन्द्रजी की जो अनन्याभक्ति है, उसी से जोवों को मोक्ष की प्राप्ति होती है, ध्रुवास्मृति ही भक्ति है। वह ध्रुवा-स्मृति-रूपा भक्ति विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण अनवसाद तथा अनुद्धर्ष इन सात कारणों से प्राप्त होती है। (इसका विशेष विवेचन ज० गु० श्रीगंगाधराचार्य प्रणीत साधन दीपिका की टीका में किया हूँ, अतः विशेषार्थी वहीं देखें)

इसी प्रकार जगदाचार्य श्री देवनन्दाचार्य जी ने भी कहा है — "हे भगवन् श्रीराम! दास्य-भाव से आपका जो स्मरण है, वह जीवों को मृत्यु-सागर से ऊद्धार करने वाला है, और आपका जो विस्मरण है, वह मृत्युरूप समुद्र में गिराने वाला है। अतः योगिजन के हृदय के आलम्बक- योगीश्वरों के हृदय-निवासी सर्वेश्वर श्री राघवेन्द्र सरकार के आश्रम में — श्रीचरणों में अपने को सर्वतोभाव से आत्म-सर्मपण - दास्यभाव से समर्पित करता हूं।" यहाँ आचार्य-चरण ने अन्वय व्यतिरेक द्वारा दास्य भगवद्भक्ति को ही प्रधानतया मोक्षकारणता के रूप में अभिव्यक्त किया है। अतः —

"सर्वज्ञस्य सर्वशक्तेर्वात्सल्यजलधेर्भगवतः श्रीरामस्य स्वभाव एवैष यत् स प्रार्थित एव सर्वकरोतीत्युपायत्व प्रार्थनाऽवश्यं कर्त्तव्येत्यपि ध्येयम्" (गी० आ० भा० १८।६६) इस आचार्य वचन प्रामाण्यानुसार मुमुक्षुजीवों को अत्यन्त कारूण्य-भाव से असहाय होकर परेश श्री रामचन्द्र जी की प्रार्थना करनी चाहिए। तभी श्रीरामचन्द्र जी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की कृपादृष्टि होती है, जो साधक को सार्युज्य देती है। निम्नांकित अभियुक्त वचन भी इसी बात की पुष्टि करते हैं –

"न हि रामात्परं किन्चित् त्राणकर्त्तारमीक्षते।

तदा जीवो भवस्यान्तं कुशलः परिपश्यति॥

रामो यदा कृपादृष्टिं पातयेत् खलु जन्तुषु।

तदैव तेषां कल्याणमुभयं प्रतिपद्यते॥

साधकों का प्रधान लक्ष्यभूत भगवत्कैंकर्य श्रीराम शरणागति के बिना असम्भव है, अतः सर्वस्वात्म समर्पण रूपदास्यभावना पर पर्याय शरणागति मुक्ति प्राप्ति के लिए अवश्य अनुष्ठेय है, जो निम्नांकित श्रुति कह रही है –

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमातमबुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥" (श्वे० ६।१७) सारांश यह कि जो पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करते हैं, तथा ब्रह्मा जी को निश्चित रूप से वेद का ज्ञान प्रदान करते हैं, उन आत्म विषयक बुद्धि को प्रकाशित करने वाले सर्वनियन्ता सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्र जी की शरणागति को उनकी नित्य कैंकर्य रूपी सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति के लिए सर्वतोभाव से प्राप्त यानी स्वीकार करता हूँ॥

श्रीरामशरणापन्न जीवों को सर्वभूतवर्गों से अभयदातृत्वरूप सर्वेश श्रीराम जी की सर्वातिशायी प्रतिज्ञावाक्य–व्रत को स्मरण कराती हुई प्रकृत-मन्त्र के आनन्दभाष्य में जगद्गुरु श्री की दिव्य वाणी पूर्णतया ध्येय है –

"अहं तं आत्म बुद्धि प्रकाशं स्वविषयकबुद्धिप्रकाशकं देवं ब्रह्मेशादि सर्वपूज्यं भगवन्तं श्रीरामं शरणं प्रपद्ये, 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेव्यो ददाम्येतद् व्रतं मम' इति भगवच्छ्रीराम प्रपत्तेरेव सर्वाभंवनिदानत्वात् सर्वेश्वरं श्रीराममेव शरणमहं प्रपद्ये। उक्ता च कृद् रामप्रपत्त्यैव परथामावाप्तिर्जगद् गुरुभिः श्री चिदानन्दाचार्यैः न्यासकलानिधौ नावाप्यते परं थाम तपोयोगसमाधिभिः।

सकृद् रामप्रपत्त्यैव प्राणिभिः प्राप्यते हि तत् "इति। ततो भगवच्छीराम प्रपत्तिरेव मोक्षार्थं विधेया मुमुक्षुभिरिति भावः।"

महर्षि श्री वाल्मीकि जी दास्यभावापन्न साधक के विषय में सर्वेश्वर श्रीराम जी के स्वभाव के तरफ ध्यान दिलाते हुए कहते हैं –

"कथन्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।

न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥"

सर्वाराध्य श्री राघवजी का यह सामान्य नियम है कि यथा कथान्चित् स्मरण या कीर्तन प्रभृति कोई भी उपकारक कार्य का सम्पादन करता है तो दास्य भाव से शरणापन्न जीवो के प्रति अति प्रसन्न हो जाते हैं। परम दयालुता के कारण पूर्व के अनेक भवोपार्जित दुष्कर्म रूप अपकारों के स्मरण नहीं करते हैं। अर्थात् " साध्यभक्तिस्तु सा हन्त्री प्रारब्धस्यापि भूयसी" इस आगम वचन प्रामाण्य से दास्यभावेन स्वप्रपन्न जीवों को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वदा के लिए अभय कर देते हैं। ऐसी उदारता श्रीरामातिरिक्त में नहीं है, जिनकी घोषणा ही तत्काल सर्वभूतों से अभय कर देने की है –

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद व्रतं मम॥"

अतः सर्वाभयप्रद श्रीराम जी की शरणागति दासभावनया मुनीश्वर गौतम जी ने स्वीकार की, जिसका उल्लेख ऋग्वेद के ९। ८६। ९ में प्राप्त होता है –

"अरं दासो न मीढुसे कराण्यहं देवाय भूर्णये अनागाः।

अचेत यदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति॥"

(वेद रहस्य ३०) इसके मार्त्तण्ड भाष्य में जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्य जी लिखते हैं –

"अहं तव श्रीरामस्यानुग्रहपात्रं गौतमः दासो न दास इव" यानी संक्षिप्त तात्पर्य यह है कि यज्ञरक्षा तथा विद्या प्राप्त कर श्रीविश्वामित्र जी के साथ अपने आश्रम में आये हुए श्रीराम जी की स्तुति करते हुए श्रीगौतम मुनि कहते हैं –

'मैं गौतम दास के समान पत्नी रूप अभीष्ट देने वाले तथा सभी अभीष्टों के देने वाले आप श्री राम जी की पुष्प चन्दन आदि से पूजा करता हूँ; क्योंकि अभीष्ट देने के कारण स्वामी तथा अचेतन प्रस्तर अवस्था को प्राप्त हुई मेरी पत्नी को आपने पद-स्पर्श से निष्पाप चेतन बनाया है। इसलिए कवियों में श्रेष्ठ मैं गौतम-चेतना को प्राप्त हुए अपनी पत्नी के शरीर को यज्ञादि कर्म की समृद्धि के लिए स्वीकार करता हूँ।

इस प्रसंग के पूर्वापर तथ्यों के पर्यालोचन से यही तथ्य सामने आता है कि– "दासभूतमिदं सर्वं ब्रह्माद्यं सकलं जगत्" इस शास्त्र वचन के अनुसार ब्रह्मादि कीट पर्यन्त सभी सर्वेश्वर श्रीराम जी के दास है। अतः नित्य पार्षद श्री हनुमन्त लालजी ने घोषणा की कि –

"दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।

हनुमान् शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥"

अर्थात् आक्लिष्ट कर्मा कोशल प्रदेश नरेश श्री रामचन्द्र जी का मैं दास हूँ, मेरानाम हनुमान् है।

इस श्री हनुमान् जी की घोषणा में अति गूढ़ रहस्य यह सन्निहित है कि मैं श्रीरामचन्द्र जी का बनावटी दास नहीं हूँ, पर स्वस्वरूप यानी जीवो के स्वाभाविक रूप से प्राप्त जो श्रीरामदासता है, वैसा दास हूँ। यह 'अक्लिष्टकर्मणः' इसमें निगूहित 'स्व- जीवदास्यं च न कर्मकृतमपितु स्वस्वरूप प्रयुक्तम्" से स्पष्टतया परिलक्षित है। इससे यह भी सुस्पष्ट होता है कि जीवमात्र उन्हीं श्रीराम का स्वाभावाविक दासतानुसन्धान से संसार-सागर तैर सकता है, अन्यथा नहीं। महात्मा तुलसीदास इन्हीं तथ्यों का सारांश अति सरल वाणी में कहते हैं –

"सेवक सेव्य भाव विनु भवन तरिअ उरगारि।

भजिय रामपद पंकज अस सिद्धान्त विचारि॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्व में प्रपंचित प्रकार से अन्वय तथा व्यतिरेक दृष्टि से अवगम करने पर यह निश्चित हो जाता है कि प्रभु सम्प्राप्ति में इतर-साधनापेक्षया श्रीरामदास्यता ही सुगम तथा श्रेष्ठ साधन है, जो जीवों के लिये स्वाभाविक रूप से सन्नियत है। तथापि कितने ही शास्त्र रहस्यानभिज्ञों ने ईश्वर दास्यता तथा सर्वेश्वर पराधीनता के विषय में कुशंका उपस्थापित की है। उसका समाधान शास्त्रीय रीति से अति संक्षिप्ततया जगद्गुरू रामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्य जी योगीन्द्र ने 'वैदार्थचन्द्रिका' में किया है। जो निम्नांकित है –

"अथैवमपि पराधीनत्वदास्यत्वयोः दुःखजनकतया तदर्थं कथं प्रवृत्तिः ? तदुक्तम् "सर्वं परवशं दुःखम् सर्वमात्मवशं सुखम्" सेवाश्ववृत्तिराख्याता तस्मात् तं परिवर्जयेत्" 'सेवया धनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्य यत्कृतम् । स्वातंत्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम्" इत्योदिनापराधीनत्वसेवकत्वयोः निषेधात्।

अत्रोच्यते– सर्वो हि संसारीभ्रम-वशाद् देहमेवात्मेति विजानाति, तस्मिंश्च देहे संसारिणामहमिति प्रतीतिर्भवति देहानुगुणं च स्वातन्त्र्यादिक प्रतीतिर्जायते। परन्तु वस्तुतोनैकम्। जीवस्य रूपन्तु देहादि विलक्षणं ज्ञानरूपं परमात्मशेषरूपम् आत्माज्ञानमयोऽमलः' इत्यादिना ज्ञानाकारत्वमात्मनः। तथा 'पतिं विश्वस्य' इत्यादिना परमात्मशेषता च विदिता भवति। ततश्च देहाभिमानवत् स्वातन्त्र्याभिमानोऽपि कर्मकृत एव तस्मात् सर्वेश्वरातिरिक्तविषयाणां सुखत्वं कर्माधीनमेव। ततस्तेषामल्पत्व- मस्थिरत्वन्च। स्वाभाविकसुखरूपं तु परमेश्वरस्यैव। अतस्तदेव नित्यं निरतिशयं च। 'कं ब्रह्म खं ब्रह्म' 'आनन्दो ब्रह्म' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इति श्रुतेः। तस्मात् ब्रह्ममात्रं सुखात्मकम्' जडे सुखदुःखात्मकत्वं कर्मकृतं न स्वरूपत इति कर्मणामभावे वस्तुनो जडस्य सुखाद्यात्मकत्वमपि निवर्त्तत एवेति।

यद्यपि 'सर्वं परवशमित्यादि तच्चु परमेश्वर व्यतिरिक्तप्रतीतिज्ञातव्यम्। सेवायाः स्ववृत्तित्व कथनत्व सेव्य सेवाविषयकमेवेति 'सह्याश्रमैः सदोपास्यः समस्तैरेक एव च' इत्युक्तेः। परमात्म या थात्म्यज्ञातृभिः सर्वैरपि सर्वदा सर्वेश्वर एवोपास्यों नान्य इति। भगवता कृष्णेनापि कथितम् 'मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते इत्यादि। इयं च भक्ति रूपा सेवा ज्ञान रूपैवेति ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्यादि स्थले वेदन पदेन कथितम्'।

अर्थात् पूर्व में कहा गया है कि ये जो जीव वर्ग हैं, अपने को परमेश्वर का परतन्त्र तथा दास समझकर के सेवा करें यही उन जीवों के सुख का कारण है। परन्तु यह कहना तो ठीक नहीं है, क्योंकि यह बात लोकविरुद्ध है। इत्यादि शंका का निराकरण करने के लिए उपक्रम करते हैं – अथैवपीत्यादि। भगवत् परतन्त्रत्व तथा दासत्व को सुख का कारण होने पर भी पराधीनता तथा दासभाव को दुःख जनक होने से चेतन-व्यक्ति को उसमें प्रवृत्ति किस तरह से होगी अर्थात् लोक इसमें प्रवृत्त नहीं हो सकता है। मनु ने भी कहा है 'पराधीनत्व सब दुःख दायक और स्वाधीनत्व सब सुखजनक है' ' सेवा कुत्सित वस्तु है' लोक में भी कहा है 'उत्तम खेती मध्यम बान (वाणिज्य)। निर्घृण सेवा भीख निदान।' सेवा करके धन – अभिलषित वस्तु को चाहने वाले मूर्ख सेवकों ने क्या किया देखो– उसने अपने शरीर की जो स्वतंत्रता थी, उसको भी छोड़ दिया' इत्यादि वचनों से पराधीनत्व तथा सेवकत्व का सर्वथा निषेध किया गया है।

इसके उत्तर में कहते हैं – अत्रोच्यते। सभी संसारी भ्रम अर्थात् कर्म के बल से देह को ही आत्मा समझता है। उस देहे में संसारी व्यक्ति को 'अहम्' एतादृश ज्ञान होता है और देह के अनुकूल स्यातन्त्र्यादि विषयक प्रतीति होती है। परन्तु वस्तुतः तो ऐसा नहीं है। जीव स्वरूप तो देहादि से विलक्षण है। ज्ञानाकार तथा भगवान् का शेष है अर्थात् भगवान् के अधीन है। 'आत्मा तो ज्ञानमय है तथा निर्मल है इत्यादि वचन से ज्ञानाकारता की जीव में सिद्धि होती है और विश्व के मालिक अर्थात् समस्त जगत् जिसके अधीन है इत्यादि वचनों से होता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि जीव परमात्मा का शेष है। इससे यह ज्ञात होता है कि देहाभिमान की तरह स्वातन्त्र्याभिमान भी शुभाशुभ कर्म जन्य ही है। इसलिए सर्वेश्वर से अतिरिक्त जितने पदार्थ हैं, उसमें सुखत्व कर्म के अधीन है, अतः इनमें अल्पत्व एवं अस्थिरता है और स्वाभाविक सुखरूपता हो परमेश्वर में ही है। इसलिए वह नित्य- निरतिशय है। श्रुति भी कहती है – ब्रह्म सुख-स्वरूप है। आकाश की तरह अपरिच्छिन्न है। ब्रह्म आनन्द - स्वरूप है' ब्रह्म सत्य, ज्ञान तथा आनन्द स्वरूप है, अतः ब्रह्म मात्र सुखात्मक है जड़ में जो सुखादिक का प्रतिभास होता है, वह कर्म प्रयोज्य है। कर्म का अवसान होने पर जड़ में सुखाद्यात्मकत्व निवृत्त हो जाता है।

'सर्वं परवशं दुःखम्' यह जो कहा है वह परमेश्वरातिरिक्त विषयक है। 'सेवाश्ववृत्तिः' यह जो कहा है, वह भी असेव्य सेवा परक है। इसीलिए श्री हनुमान जी ने 'दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य' कहा है। यानी अक्लिष्ट कर्मा सर्वेश्वर श्री राम का दास- सेवक हूँ, अन्य का नहीं। समस्त आश्रमों - प्रत्येक आश्रमों में निवास करने वालों से एक परमेश्वर ही सर्वदा उपास्य है' इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि परमात्मा की यथार्थता को जानने वाले सभी आश्रमवासियों से सर्वदा सर्वेश्वर श्रीराम जी ही उपासनीय हैं, अन्य कोई नहीं। भगवान श्री कृष्ण ने भी कहा है कि 'मुझ परमेश्वर को जो अव्याभिचरित भक्ति योग से सेवा करता है" इत्यादि यह जो भक्ति रूप सेवा है, वह ज्ञान रूप ही है, इस बात को ब्रह्मज्ञानी पर ब्रह्म को प्राप्त कर जाता है" इत्यादि स्थल में वेदन पद से कहा गया है।"

इत्याकारक आक्षेप समाधान से यह स्फुट हो जाता है कि दास्य भक्ति की श्रेष्ठता है और यही मुक्ति का सरलतम साधन है, सायुज्य मुक्ति का साधन पंचसंस्कार वर्णन प्रसंग में दास्यता के प्रति हेयभाव वालों के प्रति ज० गु० श्री केवल रामाचार्य जी 'प्रबोध रत्नमाला' में कहते हैं।

"दासः पदं श्रुतावस्ति नातो घृणा विधीयताम्।

श्रुत्यनभिज्ञा पश्य त्वं अरं दासो न मीढुषे॥ १०३॥

प्रकृत श्लोक की व्याख्या 'रत्न-प्रकाशिका' में जगद्गुरु वैदेही वलम्भाचार्य जी लिखते हैं – "वेदादौ दासपदमस्ति अतो दासपदात् घृणा न विधेया, वेदादौ दासपदस्य महीयो महत्त्वमस्ति दासशब्दो भगवतः सद्भक्तानां नामान्ते लगति——— दास पदं महीयसे गौतम ऋषये (ऋग्वेदे ९।८६।९मन्त्र) प्रायोजि तदा का कथान्यस्य। अपि च श्री हनुमान्, स्वस्मै 'दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य' इति प्रयुयोज। हे रावण! श्री कोसलेन्द्रस्याहं दासोऽस्मि। दासः अर्थात् सेवक : कस्य? भगवतो नतु संसारिणां नृणां सर्वतो महान् श्री हनुमान् किं संसारिनरस्य दास आसीत्? नहि नहि प्रभोरनन्तब्रह्माण्डनायकस्य श्रीरामस्य सेवक आसीत्।"

सम्पूर्ण प्रसंग का संकलित सूक्ष्मार्थ यही निकलता है कि मुक्ति के साधन श्रवणादि भक्ति में दास्य भक्ति ही अन्यो का उद्बोधक है। अतः इसी दास्य भावना का अवलम्बन कर मानव इस भव-सागर से पार हो सकता है, अन्यथा नहीं। शास्त्रों का निष्कर्ष है कि दास्यता की चरम परिणति ही शरणागति- प्रपत्ति है, इसके विना सायुज्य गमन कुसुमायमान है।

"सो अनन्य जाके असिमति न टरइ हनुमन्त।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवन्त॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.